Journal of Research and Development
Peer Reviewed International, Open Access Journal.
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-17, Issue-10| October - 2025

Original Article

आधुनिक बिहार में सामाजिक आन्दोलन (1900–1950) : एक समीक्षा

डॉ.रौशन कुमार
नगर पंचायत, कमतौल (अहियारी) वार्ड सं.–5,पो.थाना–कमतौल, जिला–दरभंगा
Email: raushankumarsanu@gmail.com

Manuscript ID:
JRD -2025-171038
ISSN: 2230-9578
Volume 17
Issue 10
Pp. 181-183
October. 2025
Submitted: 20 Sept. 2025
Revised: 30 Sept. 2025
Accepted: 15 Oct. 2025
Published: 31 Oct. 2025

सारांश

बिहार की सामाजिक संरचना प्राचीन काल में वर्ण आधारित तथा उसके बाद सोपानयुक्त जाति प्रथा पर आधारित रही है जो विभिन्न प्रकार के अंधविश्वासों, कुरीतियों, पाखंडों तथा आडम्बरों से ग्रसित रहा है। चूँकि प्राचीन और मध्यकाल में सामाजिक आन्दोलनों के दायरे सीमित थे। अतः इस दौरान सामाजिक बदलाव की गति अत्यंन्त ही धीमी थी, किन्तु भारत में ब्रिटीश राज की स्थापना के बाद न केवल बिहार में बल्कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। 19वीं शताब्दी के अन्त तक आते–आते बिहार में कई सामाजिक आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार हो गई थी, और 20वीं शताब्दी के प्रारंभ तक बिहार में वृहत पैमाने पर कई जातीय सभाएँ तथा जाति सुधारवादी आन्दोलन प्रारंभ हो गए। धीरे–धीरे इस जातीय सुधारवादी आन्दोलन में आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन, ब्रह्मसमाज, थियोसोफिकल सोसाईटी आदि ने भी प्रवेश किया, किन्तु सर्वाधिक लोकप्रिय आर्यसमाज हुआ। आर्यसमाज ने न केवल विभिन्न सामाजिक कुप्रथाओं का जमकर विरोध किया, अपितु सामाजिक समानता के लिए छुआ–छूत का विरोध कर, पिछड़ी जातियों के बीच जनेऊ आन्दोलन का सूत्रपात भी किया, जो बाद में जातीय आन्दोलन का एक संघर्षशील मुद्दा बनकर सामाजिक–जातीय तनाव और संघर्ष को जन्म दिया। धीरे–धीरे बिहार में चुनाव की राजनीति भी तेज होने लगी और सामाजिक–जातीय आन्दोलन का वृहत पैमाने पर राजनीतिकरण भी होने लगा।

कूट शब्द : *समाज, जाति, कुप्रथा, आन्दोलन, सुधार*

प्रस्तावना

बिहार का पारम्परिक समाज अनेक प्रकार की रूढ़ियों–अंधविश्वासों कुरीतियों, पाखण्डों और विभिन्न आडम्बरों से ग्रसित रहा है तथा इन्हें धर्म, सत्ता–शासन एवं परम्पराओं का संरक्षण भी हासिल रहा है। बिहार की सामाजिक संरचना सोपानयुक्त जाति प्रथा पर आधारित रही है और इसे भी प्राचीन तथा मध्यकाल में धर्म एवं सत्ता का समर्थन प्राप्त था। अतः बिहार की न तो सामाजिक संरचना में और न ही सामाजिक व्यवहार में कोई बदलाव आ सकता था। हालांकि छठी सदी ई० पू० की सामाजिक–धार्मिक क्रांति और फिर पूर्व मध्यकाल से जारी भक्ति आन्दोलन की विभिन्न धाराएँ भारतीय समाज में निरंतर हलचल पैदा करती रही है। भारतीय समाज निरंतर गतिशील बना रहा है और इसमें समय अंतराल पर परिवर्तन भी होते रहे हैं। वर्ण के अन्तर्गत जातियों अथवा उपजातियों के सामाजिक स्तर में बदलाव तो होते रहे, लेकिन सामाजिक संरचना का वास्तविक आधार सदैव वर्णव्यवस्था ही बना रहा है। हलांकि राजसत्ता एवं अर्थसत्ता की प्राप्ति के मार्ग में वर्ण अथवा जाति कभी बाधक नहीं रही है। प्राचीन और मध्यकाल में सामाजिक आन्दोलनों के दायरे सीमित थे और यही कारण है कि इस दौरान सामाजिक बदलाव की गति अत्यन्त ही धीमी थी।

भारत में ब्रिटीश सत्ता की स्थापना के साथ ही अंग्रेजों नें अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए भारत में एक आधुनिक राज्य की स्थापना की और शासन, सेवा, रोजगार तथा उद्यम के क्षेत्र में नए अवसर सृजित किए जिससे अबतक कुछ भारतीय अनजान थे। इससे पूर्व इन क्षेत्रों में प्रवेश वर्ण एवं जाति व्यवस्था के आधार से होती थी। किन्तु अब नए अवसरों को पाने के लिए आधुनिक शिक्षा की जरूरत थी। नए अवसरों को हासिल करने के लिए अब कोई जातीय या धार्मिक बाध्यता नहीं रही। गौरतलब है कि ब्रिटिश शासन के शुरूआती दौर में आधुनिक शिक्षा और नए अवसरों पर पारम्परिक तौर से उच्च जातियों के लोगों ने वर्चस्व कायम कर लिया।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)
This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International Public License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work noncommercially, as long as appropriate credit is given and the new creations ae licensed under the idential terms.

Address for correspondence:
डॉ.रौशन कुमार, नगर पंचायत, कमतौल (अहियारी) वार्ड सं.-5,पो.थाना-कमतौल, जिला-दरभंगा

How to cite this article:
कुमार, . रौशन . (2025). आधुनिक बिहार में सामाजिक आन्दोलन (1900-1950): एक समीक्षा. Journal of Research and Development, 17(10), 181–183. https://doi.org/10.5281/zenodo.17646571

Quick Response Code:
Website: https://jrdrvb.org/
DOI: 10.5281/zenodo.17646571
OPEN ACCESS

Journal of Research and Development
Peer Reviewed International, Open Access Journal.
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-17, Issue-10| October - 2025

इस नवोदित अभिजन वर्ग को जिसे मध्यम वर्ग कहा गया, सामाजिक संरचना का आधार था। भारत के इसी नवोदित मध्यम वर्ग ने ही सामाजिक–धार्मिक पुनरूत्थानवादी आन्दोलन का सूत्रपात किया, उनके द्वारा विभिन्न सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक पाखंडों का तीव्र विरोध किया गया। लेकिन इन भारतीय नवोदित अभिजन वर्ग के मध्य काफी अन्तर्विरोध भी था। चूँकि नए अवसर सीमित थे, अतः अभिजन वर्ग के भिन्न–भिन्न जातीय समूहों के मध्य इन नवीन अवसरों का लाभ उठाने के लिए तीव्र प्रतिस्पर्द्धा भी थी। यह प्रतिस्पर्द्धा सिर्फ जातीय ही नहीं अपितु धार्मिक स्तर पर भी थी। परिणामस्वरूप 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में एक ओर जहाँ समाजिक–धार्मिक पुनरूत्थानवादी आन्दोलन चल रहे थे वहीं अभिजात वर्ग के विभिन्न जातीय एवं पंथिक समूहों ने कई जातीय एवं साम्प्रदायिक आन्दोलन का मार्ग भी प्रशस्त किया। विभन्न स्थानीय निकायों और व्यवस्थापिका सभा के चुनावों ने भी जातीय सम्प्रदायिक आन्दोलनों को काफी जोर दिया। सामाजिक चेतना में व्याप्त कई अन्तर्विरोधों के बावजूद भारत के प्रायः सभी जातीय, वर्गीय, पंथिय एवं धार्मिक समूहों में राष्ट्रीय चेतना को उर्जा एवं गति प्रदान किया।[1]

सामाजिक–धार्मिक पुनरूत्थानवादी आन्दोलनों और उसके बाद कुछ गाँधीवादी सामाजिक सुधारवादी आन्दोलनों के अतिरिक्त औपनिवेशिक काल में अखिल भारतीय स्तर पर कोई ठोस एवं संगठित सामाजिक आन्दोलन प्रतीत नहीं हुआ। अम्बेदकरवादी दलित आन्दोलन का भी स्वरूप अखिल भारतीय नहीं था। लेकिन इस समयावधि में भारत के अलग–अलग प्रान्तों और सांस्कृतिक इकाई वाले क्षेत्रों में अनेक सामाजिक आन्दोलन हुए, जिनमें सर्वाधिक तीव्र जातीय आन्दोलन था। विभिन्न क्षेत्रीय विशिष्टताओं से युक्त जातीय आन्दोलन भारत के लगभग सभी भागों में हुआ, जहाँ एक ओर सामाजिक पद सोपान के ऊँची जातियाँ अपने वर्चस्व को बरकरार रखने के लिए दृढसंकल्पित थीं तो वहीं दूसरी ओर नीचे के सोपानों पर अवस्थित जातियाँ सदैव ऊँची जातियों की बराबरी करने एवं सामाजिक समानता के लिए कृतसंकल्प थीं।[2]

हालांकि बिहार में आधुनिक विचारधाराओं से युक्त सामाजिक आन्दोलन कुछ देर से शुरू हुआ, किन्तु 19वीं सदी के अन्त तक आते–आते बिहार में कई सामाजिक आन्दोलनों की सुगबुगाहट शुरू हो चुकी थी और कई आन्दोलनों की पृष्ठभूमि भी तैयार हो गई थी। परिणामतः 20वीं सदी के शुरूआत में ही बिहार में सामाजिक आन्दोलन ने शहरी अभिजनवर्ग को भी प्रभावित करना शुरू कर दिया। साथ ही अत्यधिक एवं वृहत पैमानों पर जातीय सभाएँ और जाति सुधार आन्दोलन की लहरें भी उत्पन्न होने लगी।[3]

यद्यपि बिहार में सामाजिक–धार्मिक पुनरूत्थानवादी एवं सुधारवादी आन्दोलनों में धीरे–धीरे ब्रह्मसमाज, रामकृष्णमिशन, थियोसोफिकल सोसायटी आदि ने प्रवेश किया। लेकिन इनमें सर्वाधिक लोकप्रिय आर्य समाज हुआ। आर्य समाज ने 1904 में संगठित आन्दोलन के रूप में सशक्त उपस्थिति दर्ज की। इनके कार्यकलापों में धर्म प्रचार, शास्त्रार्थ, मानवसेवा, समाजसेवा, शिक्षण संस्थानों की स्थापना, साहित्य प्रकाशन, अछूतोद्धार आदि के अतिरिक्त जाति प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध, छुआछूत, मूर्त्ति पूजा, धार्मिक कर्मकांडों आदि सभी प्रकार की प्रचलित सामाजिक कुप्रथाओं, रीति रिवाजों और पाखण्डों का घोर विरोध भी सम्मिलित था। आर्य समाज ने बिहार में सामाजिक समानता के लिए जनेऊ आन्दोलन का भी सूत्रपात किया, जो बाद में जातीय आन्दोलनों का एक प्रमुख ज्वलंत एवं संघर्षशील मुद्दा बन गया। आर्य समाज ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में काफी योगदान दिया। आर्य समाज ने बिहार के मध्यवर्त्ती पिछड़ी जातियों को भी आकर्षित करने में काफी सफलता प्राप्त की। इसमें ग्वाला, कुर्मी, कोइरी, बढ़ई, दुसाध, कहार आदि की काफी संख्या थी। धीरे–धीरे बिहार के कबीरपंथी तथा कुछ अन्य पंथ या समुदाय के लोग भी आर्य समाज से जुड़े। जाहिर है कि आर्य समाज आन्दोलन का बिहार में यथेष्ट विस्तार हुआ क्योंकि इसने न केवल सामाजिक–धार्मिक–जातीय सुधार पर अत्यधिक बल दिया, अपितु शैक्षणिक सुधार, मानवसेवा तथा सामाजिक समानता की दिशा में पुरजोर कार्य भी किया।[4] इस दौरान बिहार में सबसे अधिक सक्रिय जातीय सभाएँ, संगठन एवं सभाएँ थी। इनमें ब्राह्मणों, कायस्थों और भूमिहार ब्राह्मणों जैसी ऊँची जातियों की ही नहीं बल्कि यादवों, कुर्मियों, कोइरियों, दुसाधों, तेलियों, नाईयों चमारों, कुम्हारों, बनियों आदि जैसे पिछड़ी जातियों के जातीय समाज भी काफी सक्रिय एवं गतिशील थे। बिहार में बंगाली वर्चस्व को समाप्त करने के खिलाफ आन्दोलन की बागडोर कायस्थों और अशराफ मुसलमानों ने संभाल रखा था।

इस दौरान बिहार में कायस्थ महासभा भी सबसे अधिक सक्रिय थी। स्वामी सहजानन्द ने भूमिहार ब्राह्मणों को संगठित किया। परिणामस्वरूप सशक्त भूमिहार ब्राह्मण सभा की स्थापना हुई। भूमिहार ब्राह्मण सभा काफी प्रभावशाली थी। चूँकि यह बिहार के भू–स्वामी जातियों का संगठन था। अतः इसे बिहार के कई बड़ी रियासतों का संरक्षण भी प्राप्त था।[5] मध्यमवर्गीय पिछड़ी जातियों की सभाओं ने अपनी–अपनी जातियों में प्रचलित विभिन्न सामाजिक–धार्मिक कुप्रथाओं के अन्त, आधुनिक शिक्षा के प्रसार, ऊँची जातियों के साथ बराबरी तथा सामाजिक समानता के लिए भरपूर प्रयास किए। इनमें पिछड़ी जातियों के तीन प्रमुख जाति कुर्मी, कोईरी और यादव सबसे आगे और सक्रिय थे। इनकी सभाओं द्वारा खुद को क्षत्रिय घोषित करने, जनेऊ धारण करने, ऊँची जातियों का जुल्म न सहने, बेगारी न करने, नशा न करने आदि की अपील की जाती थी। इसे अतिरिक्त जनगणना के अवसर पर यह पिछड़ी जातियाँ स्वयं को क्षत्रिय घोषित करने की अपील भी सरकार से करते थे।[6]

पिछड़ी जातियों के अतिरिक्त क्षत्रिय होने का दावा तो कई दलित जाति की सभाओं द्वारा भी की जाती थी। प्रायः सभी मध्यवर्त्ती पिछड़ी और दलित जातियों की सभाओं ने अपनी–अपनी जाति का इतिहास प्रकाशित करवाया जिसमें खुद को किसी न किसी प्राचीन ऋषि या वीर क्षत्रिय राजा का वंशज बताया।[7]

कुछ दलित जातियाँ स्वयं को परशुराम द्वारा क्षत्रियों के जनसंहार से बचे हुए क्षत्रियों से अपनी उत्पत्ति मानते थे चमार अपने को बहिष्कृत ब्राह्मण मानकर खुद को रैदास कहते थे। इस प्रकार जाति का भी अध्यात्मीकरण किया गया। जातीय आन्दोलनों का जोर बिहार में 20वीं सदी के तीसरे दशक तक लगातार बढ़ता रहा।[8]

बिहार में चुनाव की राजनीति भी लगातार तेज होती गई और सामाजिक जातीय आन्दोलन का राजनीतिकरण भी होता गया। बिहार में धीरे–धीरे जातीय सामाजिक सुधार आन्दोलन जातीय चेतना के रूप में परिवर्तित हो गया और 1952 के प्रथम आम चुनाव आते–आते सम्पूर्ण बिहार भयंकर जातिवाद से ग्रस्त हो चुका था।[9] जिसकी वृहत्त चर्चा यहाँ आवश्यक नहीं है।

Journal of Research and Development
Peer Reviewed International, Open Access Journal.
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-17, Issue-10| October - 2025

बहरहाल, बिहार में चम्पारण सत्याग्रह के साथ ही गाँधीवादी सामाजिक आन्दोलन का भी प्रवेश हुआ। असहयोग आन्दोलन के पश्चात गाँधी ने बिहार में रचनात्मक कार्यक्रमों पर काफी जोर दिया। सामाजिक सुधार आन्दोलन कार्यक्रम के अंतर्गत गाँधी ने बाल–विवाह, पर्दा प्रथा, छूआछूत आदि जैसी कई सामाजिक कुरीतियों का न सिर्फ तीव्र विरोध किया, बल्कि दलितोद्धार, मद्य–निषेध, शिक्षा का पसार एवं स्त्री शिक्षा पर विशेष बल भी दिया गया। गाँधीजी के इन रचनात्मक कार्यक्रमों से प्रभावित होकर बिहार की महिलाओं ने भी घर के बाहर कदम रखकर उनके कार्यक्रमों में सहभागी बनी। बिहार में बह रही जातीय आन्दोलनों की आँधी के बीच गाँधीवादी सामाजिक आन्दोलन बिहार में सामाजिक समरसता एवं समानता का सन्देश लेकर आया था किन्तु गाँधी के दलितोद्धार कार्यक्रम का उच्च जातियों ने तीव्र विरोध किया और सामाजिक असमानता एवं ठकराव बढ़ता गया।[10] यद्यपि बिहार में अम्बेडकरवादी दलित आन्दोलन का प्रवेश भी हुआ, किन्तु यह प्रभावी नहीं हो सका। गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रम ही बिहार की दलित जातियों में काफी लोकप्रिय हुआ और दलित जातियों को अपनी ओर आकर्षित किया था। बिहार में समाजवादियों और साम्यवादियों ने भी सामाजिक–जातीय चेतना के विकास के लिए कुछ काम किया और सर्वहारा क्रांति की सामाजिक आधारशिला तैयार करने की कोशिशें की। हालांकि वे इसमें सफल नहीं हो सके, किन्तु बिहार में सामाजिक–राजनीतिक परिवर्तन की अवधारणा रखी।[11]

निष्कर्ष

इस प्रकार बिहार में सामाजिक–जातीय आन्दोलनों नें 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में काफी हलचल पैदा की। एक तरफ जहाँ इसने विभिन्न सामाजिक कुरीतियों पर जमकर प्रहार किया, तो वहीं दूसरी ओर इसने आधुनिक शिक्षा, महिला शिक्षा, सामाजिक–धार्मिक समानता तथा आधुनिकीकरण की भी भरपूर एवं सार्थक कोशिशें की। यद्यपि बिहार में सामाजिक आन्दोलनों ने सामाजिक जातीय तथा धार्मिक समरसता और सामंजस्य स्थापित करने की कोशिशें तो अवश्य की, किन्तु सामाजिक–जातीय तनाव भी पैदा किए। जनेऊ आन्दोलन इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। शायद आर्य समाजियों ने यह कल्पना भी नहीं की होगी कि सामाजिक समानता के लिए उनके द्वारा चलाए जा रहे जनेऊ आन्दोलन उनके (उच्च जातियों) के ही वर्चस्व को चुनौती देकर सामाजिक–जातीय तनाव एवं संघर्ष को जन्म देगा।

20वीं शताब्दी के मध्य तक आते–आते बिहार में जातीय प्रतिस्पर्धा चरम पर पहुँच गया और संपूर्ण बिहार जातिवाद के जाल में बुरी तरह फँस गया। सामाजिक आन्दोलन का राजनीतिकरण भी होने लगा, जिसमें पिछड़ी जातियों के सबसे शसक्त संगठन 'त्रिवेणी संघ' की काफी भूमिका रही। 'त्रिवेणी संघ' विशुद्ध रूप से पिछड़ी जातियों का राजनीतिक संगठन बन गया। यद्यपि जाहिर है कि 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में बिहार में सामाजिक आन्दोलन की अनेक धाराएँ थीं एवं उनके हित तथा विचारधारा भी आपस में टकराते थे, किन्तु भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में वे बाधक नहीं बने। आज संपूर्ण बिहार जिस जातिवाद से बुरी तरह ग्रस्त हो गया है, वह जातिवाद सामाजिक–जातीय आन्दोलन के गर्भ से ही पैदा हुआ है।

संदर्भ

1. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकांत, 2001, बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. उपर्युक्त
3. उपर्युक्त
4. उपर्युक्त, पृ. 70–72
5. उपर्युक्त, पृ. 45–46
6. उपर्युक्त, पृ. 51–55
7. उपर्युक्त, पृ. 66–69
8. दि इंडियन नेशन, 25, 27 अप्रैल, 1 मई, 13 अक्टूबर और 2 नवंबर, 1937
9. श्रीकांत, 2005, बिहार में चुनाव : जाति, हिंसा और बूथ लूट, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 128–129
10. पटना कलक्टर की रिपोर्ट, फाइल 38/34, 25 मार्च, 1934
11. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकांत, 2015, स्वर्ग पर धावा : बिहार में दलित आन्दोलन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।